काव्य के तत्त्व

छंद

मात्रा, वर्ण, यति, तुक आदि की व्यवस्था के अनुरूप नियमों में बँधी पद्य रचना को छंद कहा जाता है ।

भाषा के प्रमुख दो अंग वर्ण और मात्रा का छंदशास्त्र में विशेष महत्त्व होता है । इनके आधार पर ही छंद के दो भेद किए जाते हैं – वर्णिक और मात्रिक ।

छंदों में मात्रा तथा वर्ण के अलावा पाद (चरण) यति, गति, तुक और गण का विशेष महत्त्व होता है । इन्हें छंद के विविध अंग कहा जा सकता है ।

1. पाद या चरण : छंद के उस खंड को पाद या चरण कहा जाता है, जो प्रारंभ से पहली यति (विराम) तक एक उक्ति का वाहक होता है । ये प्रायः कम से कम चार अवश्य होते हैं ।

2. यति : यति का अर्थ विराम होता है । इससे चरणांत का निर्धारण होता है ।

मात्रा

मात्रा काल या समय को कहते हैं । व्याकरण के ह्रस्व और दीर्घ को छंदशास्त्र में लघु और गुरु कहा जाता है और इन दोनों के चिह्न क्रमशः एक खड़ी पाई (।) और विकारी का एक चिह्न (ऽ) होते हैं ।

तुक

ध्वनि साम्य को तुक कहा जाता है । पद्य में चरणों के अंतिम वर्णों में ध्वनि साम्य रखकर विशेष लय पैदा की जाती है । तात्पर्य यह कि चरणांत के वर्णों की आवृत्ति ही तुक है ।

मुक्त छंद में इसका बंधन स्वीकार नहीं किया जाता ।

मात्राओं की गिनती - लघु गुरु का विचार

1. सारे ह्रस्व स्वर-व्यंजन लघु होते हैं ।
2. संयुक्ताक्षर भी लघु होते हैं ।
3. चंद्रबिंदु (ँ) लघु होता है ।
4. अनुस्वार (ं) गुरु का बोधक होता है ।
5. सारे दीर्घ वर्ण गुरु होते हैं ।
6. ए, ऐ, ओ, औ भी दीर्घ होने के कारण गुरु होते हैं ।
7. संयुक्ताक्षर के पूर्व का वर्ण अनिवार्यतः गुरु होता है ।
8. विसर्गांत सभी वर्ण गुरु होते हैं ।

छंद दो तरह के होते हैं – (क) मात्रिक छंद (ख) वर्णिक छंद

मात्रिक छंद : मात्रिक छंद की पहचान यह है कि उसमें चरण की कुल मात्राओं की प्रमुखता होती है । उनमें वर्णों के क्रम का कोई बंधन नहीं होता । मात्रा के आधार पर ही उसका स्वरूप निर्धारण होता है ।

वर्णिक छंद : वर्णिक छंदों में वर्णों के क्रम की प्रधानता होती है । किसी चरण में यदि कोई वर्ण गुरु है तो सभी पादों में उस संख्या और क्रम का वर्ण गुरु ही होगा । वर्णिक छंदों को वर्णवृत्त या वृत्त भी कहा जाता है ।

मात्रिक छंद

1. **दोहा :** यह एक मात्रिक छंद है । इसमें प्रथम तथा तृतीय चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं और दूसरे तथा चौथे चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं । प्रत्येक चरण के अंत में यति होती है । सम चरणों (दूसरे और चौथे) के अंत में लघु पड़ता है । इसमें चारों चरणों का तुक मिलना निश्चित होता है । जैसे-

   ऽऽ ऽ। । ऽ । । । – 13
   तंत्री नाद कवित्त रस

   ।।। ऽ। ।। ऽ। – 11
   सरस राग रति रंग

   ।।ऽऽ ऽऽ ।ऽ – 13
   अनबूड़े बूड़े तिरे

   ऽ ऽऽ ।। ऽ। – 11
   जे बूड़े सब अंग

   कबीरदास, रहीम, बिहारी और तुलसीदास के दोहे प्रसिद्ध रहे हैं ।

2. **सोरठा :** चार चरणों वाला यह मात्रिक छंद दोहे के ठीक विपरीत होता है । इसके विषम चरणों यानी प्रथम तथा तृतीय में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं और सम चरणों यानी दूसरे तथा चौथे में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं । जैसे -

   ऽ। ऽ। ऽऽ। – 11
   मूक होइ वाचाल

   ऽ। ।ऽ ।।।।।।। – 13
   पंगु चढ़ै गिरिवर गहन

   ऽ।।ऽ । ।ऽ। – 11
   जासु कृपा सु दयाल

   ।।। ।।। ।।।। ।।। – 13
   द्रवउँ सकल कलिमल दहन

3. **चौपाई**

   मात्रिक छंद चौपाई में चार चरण होते हैं और चारों चरणों में सोलह-सोलह मात्राएँ होती हैं । चरणों के अंत में जगण (।ऽ।) या तगण (ऽऽ।). का निषेध रहता है । जैसे -

I I S S I S : I I S S - 16
जब ते राम ब्याहि घर आए ।
I I I I S I I S I I S S - 16
नित नव मंगल मोद बढ़ाए ॥
I I I S I I I S I I S S - 16
भुवन चारि दस भूधर भारी ।
I I I S I I I I I I I I S S - 16
सुकृत मेघ बरसहिं सुख बारी ॥

4. **रोला**

मात्रिक छंद रोला में चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में चौबीस-चौबीस मात्राएँ होती हैं। ग्यारह और तेरह मात्राओं पर यति रहती है और अंत में दो गुरु या लघु पड़ते हैं। जैसे-

I I S I I I I I I I I I I I I I I S S I I - 24
सुभ सूरज कुल कलस, नृपति दसरथ भै भूपति ।
I I S I I S S I I I I I I S I S I I I - 24
तिनके सुत भै चारि चतुर चित चारु चारुमति ॥
S I S I I I I S I I I I S I I I I S I I - 24
रामचंद्र भुवनचंद्र भरत भारत भुव भूषण ।
I I I S I S S I S I S I I I I S I I - 24
लक्ष्मण और शत्रुघ्न दीह दानव दल भूषण ॥

5. **हरिगीतिका**

28 (अट्ठाइस) मात्राओं के प्रत्येक चरण वाला सममात्रिक छंद हरिगीतिका कहलाता है। इसमें 16 और 12 मात्राओं पर यति पड़ती है और अंत में लघु-गुरु का प्रचलन है । जैसे-

I I S I S I I S I I I S I I I S S S I S - 28
अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है
S S I I I S S I S S S I S S S I S - 28
न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है ।
S S S I S I I I S I I S I I I I I S I S
दुर्वृत्त दुर्योधन न जो शठता सहित हठ ठानता
S S I S S S I S S S I S I I S I S - 28
जो पांडवों की मान्यता को प्रीतिपूर्वक मानता ।

6. **गीतिका**

गीतिका 26 मात्राओं के प्रत्येक चरण वाला छंद है । इसमें 14 और 12 मात्राओं पर यति पड़ती है और अंत में लघु-गुरु (IS) होते हैं । जैसे-

S I S S S I S S S I I I S S I S - 26
हे प्रभो ! आनंद दाता ज्ञान हमको दीजिए ।
S I S S S I S S S I I I S S I S - 26
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए ।

S I S S I S I I I S I I I S S S I S – 26
लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बनें ।

S I S S S I S I I S I I I S S I S – 26
ब्रह्मचारी धर्मरक्षक वीरव्रतधारी बनें ॥

चारों चरण 26-26 मात्राओं के हैं और सबके अंत में लघु-गुरु (।S) की स्थिति है ।

वर्णिक छंद

1. सवैया

सवैया कोई एक छंद नहीं बल्कि बाईस से लेकर छब्बीस वर्णों के पादों वाले अनेक छंदों का समूह है । इनमें प्रमुख हैं – मत्तगयंद सवैया, दुर्मिल, किरीट, सुंदरी आदि । मत्तगयंद सवैया का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S = 23
जाल प्रपंच पसार घने कुल गौरव का उर फाड़ रहा है ।

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S = 23
मानव मण्डल में मिल दाहक दानव दुष्ट दहाड़ रहा है ॥

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S = 23
जाति समुन्नति की जड़ को कर घोर कुकर्म उखाड़ रहा है ।

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S = 23
भूल गया प्रभु शंकर को जड़ जीवन जन्म बिगाड़ रहा है ॥

2. कवित्त

कवित्त हिंदी का एक लोकप्रिय वर्णिक छंद है । इसके चार प्रमुख भेद बताए गए हैं – घनाक्षरी, रूपघनाक्षरी, देवघनाक्षरी और मनहरण । इनमें भी घनाक्षरी तथा मनहरण विशेष लोकप्रिय रहे हैं । घनाक्षरी का परिचय द्रष्टव्य है –

घनाक्षरी : घनाक्षरी कवित्त इकतीस वर्णों के प्रत्येक चरण वाला एक वर्णिक छंद है । अंतिम वर्ण प्राय: गुरु (S) होता है । इसमें चार चरण होते हैं । जैसे –

S I S I I I I I I S I S I I S I S I I S I I I I I S I S I S
अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से, हने भट लाखन लषण जातुधान के ।

S I S I S I S I S I I I S I S I S I S I S S S I S I I I S I S
मारि कै पछारि कै उपारि भुजदंड चंद, खंड-खंड डारे ते बिदार हनुमान के ।

S I I I S I S I S I S I S I I I S I I I S I I S S S S S S I S
कूदत कबंध के कबंध बंब सी करत, धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के ।

I I S I S I I I S I S I S I I I S I I I S I I S S I I I S I S
तुलसी महेस विधि लोकपाल देव गन, देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के ॥

अलंकार

कविता की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहा जाता है । अलंकार का शाब्दिक अर्थ होता है 'गहना' । गहने का धर्म है शोभा या सुंदरता को बढ़ाना । मनुष्य अपनी शोभा बढ़ाने के लिए हार, कर्णफूल, तिलक आदि आभूषण धारण करता है । इनके अलावा मनुष्य के व्यक्तित्व की शोभा बढ़ाने में

उसकी सत्यवादिता, ईमानदारी, प्रेमशीलता, विनोदप्रियता, वीरता आदि गुण भी प्रमुख भूमिका निभाते हैं ।

काव्य में भी सौंदर्य या चमत्कार बढ़ाने के लिए कवियों द्वारा विभिन्न प्रयत्न किए जाते हैं । ये प्रयत्न शब्दगत और अर्थगत दोनों होते हैं । यानी काव्य की शोभा बढ़ाने के लिए प्रयुक्त शब्दों में कुछ विशेष प्रयोग किए जाते हैं । इसी तरह कुछ विशेष प्रयोग उनके अर्थों को प्रभावित करते हैं । इस तरह अलंकार के दो भेद हैं – (क) शब्दालंकार (ख) अर्थालंकार ।

शब्दालंकार

जहाँ शब्द के प्रयोग विशेष से काव्य में चमत्कार आता है, वहाँ शब्दालंकार होता है । शब्दगत होने के कारण शब्द के परिवर्तन से यह अलंकार नष्ट हो जाता है । एक उदाहरण देखें – ''तरणि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाए ।'' इस उदाहरण में 'तरणि' की जगह सूर्य या तनूजा की जगह बेटी अथवा दोनों के लिए यमुना शब्द का प्रयोग किया जाए तो उसका अलंकार नष्ट हो जाता है जो तवर्ण की अनेक आवृत्ति से पैदा हुआ है ।

प्रमुख शब्दालंकार

1. **अनुप्रास :** जहाँ वर्णों की एक या अनेक बार आवृत्ति हो वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है । जैसे –

''कंकन किंकिनि नुपूर धुनि सुनि । कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।।''

यहाँ 'क' और 'न' वर्ण की आवृत्ति से उत्पन्न अलंकार अनुप्रास कहा जाता है । इसके छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास आदि भेद भी होते हैं ।

2. **यमक :** जहाँ किसी शब्द की भिन्न अर्थों में अनेक बार आवृत्ति हो वहाँ यमक अलंकार होता है । जैसे –

''कनक-कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय ।
इहि खाए बौरात नर उहि पाये बौराय ।।''

उपर्युक्त उदाहरण में कनक शब्द की भिन्न अर्थ से युक्त आवृत्ति से यहाँ यमक अलंकार का चमत्कार पैदा हुआ है ।

3. **श्लेष :** जहाँ एक शब्द के एक से अधिक अर्थ निकलते हों वहाँ श्लेष अलंकार होता है । जिस शब्द में एक से अधिक अर्थ निहित होते हैं उसे श्लिष्ट पद कहा जाता है । इस तरह श्लिष्ट पद द्वारा अनेक अर्थों का कथन श्लेष अलंकार होता है । जैसे –

''रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून ।
पानी गए न ऊबरै, मोती मानुस चून ।।''

इस दोहे में 'पानी' श्लिष्ट पद है । इसके तीन अर्थों चमक, प्रतिष्ठा और जल से यहाँ श्लेष अलंकार का चमत्कार पैदा हुआ है ।

4. **वक्रोक्ति :** जहाँ प्रत्यक्ष अर्थ से भिन्न कोई अन्य अर्थ लिया जाए वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है । जैसे –

''एक कबूतर देख हाथ में,
पूछा कहाँ अपर है,

उसने कहा अपर कैसा ?
लो, यह उड़ गया सपर है ।''

उपर्युक्त उदाहरण में 'अपर' और 'सपर' के अर्थभेद से वक्रोक्ति अलंकार संभव हुआ है । पहले अपर का अर्थ दूसरा है जबकि श्रोता द्वारा दूसरे 'अपर' का अर्थ परहीन (बिना पंख का) लिया गया है ।

अर्थालंकार

काव्य में अर्थ विशेष पर आश्रित चमत्कार को अर्थालंकार कहा जाता है ।

''चंद्रबदनि नहि जीउति रे बध लागत काहे ।''

(चंद्रमा रूपी मुखवाली नायिका जीवित नहीं रहेगी, इसे क्यों मार रहे हो ।)

उपर्युक्त उदाहरण में 'चंद्रबदन' में अलंकार है । यह अलंकार अर्थगत है । चंद्रबदन की जगह विधुबदन लिख दिया जाए या शशिबदन लिख दिया जाए तब भी वह अलंकार अर्थगत होने के कारण नष्ट नहीं होता । इसलिए यहाँ अर्थालंकार है ।

प्रमुख अर्थालंकार

अर्थालंकार के अनेक भेदोपभेद किए गए हैं । इनमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, संदेह, प्रतीप, विरोधाभास, असंगति, विषम आदि प्रमुख हैं ।

1. उपमा अलंकार : ''सादृश्य के आधार पर, वर्ण्यवस्तु की विशेषता बताने के लिए अन्य वस्तु की तुलनीयता का कथन करना उपमा अलंकार होता है ।'' उपमा अलंकार के चार अंग होते हैं –

(क) उपमेय : इसे प्रस्तुत भी कहते हैं । यानी वह प्रस्तुत वर्ण्य विषय उपमेय कहलाता है जिसकी विशेषता बताने के लिए अन्य वस्तु से तुलना प्रस्तुत की जाती है ।

(ख) उपमान : इसे अप्रस्तुत भी कहा जाता है । प्रस्तुत वर्णनीय वस्तु की विशेषता प्रकट करने के लिए जिस अन्य वस्तु से तुलना प्रस्तुत की जाती है उसे उपमान कहा जाता है । सूत्र रूप में समझा जाए कि 'जिसकी' यानी उपमेय और 'जिससे' यानी उपमान । उपमान उपमेय से अनिवार्यतः अधिक गुणशाली और प्रसिद्ध होता है ।

(ग) साधारण धर्म : उपमेय और उपमान के बीच जिस विशेषता की समानता बताई जाती है उसे साधारण धर्म कहते हैं । यह धर्म दोनों में समान रूप में रहता है इसलिए इसे साधारण धर्म कहा जाता है ।

(घ) वाचक : उपमेय और उपमान के बीच की समानता सूचित करने वाले पद को वाचक कहा जाता है । सा, जैसा, समान, के समान, सम आदि प्रचलित वाचक हैं । जैसे – ''मुख चंद्रमा के जैसा सुंदर है ।''

इस उक्ति में 'मुख' वर्ण्य है इसलिए वह उपमेय या प्रस्तुत है । 'चंद्रमा' उपमान या अप्रस्तुत है, 'सुंदर' साधारण धर्म है और 'जैसा' वाचक है । उपमा अलंकार के अनेक भेदोपभेद होते हैं ।

2. रूपक : जहाँ उपमेय पर उपमान का निषेधरहित आरोप होता है वहाँ रूपक अलंकार होता है । निषेधरहित का तात्पर्य यह है कि इसमें अलग से साधारणधर्म तथा वाचक का उल्लेख नहीं होता । जैसे - ''अंबर-पनघट में डुबो रही तारा-घट उषा-नागरी''

जयशंकर प्रसाद की इस पंक्ति में उपमेय अंबर, तारा और उषा पर उपमान पनघट, घट

और नागरी का निषेधरहित आरोप हुआ है इसलिए यहाँ रूपक अलंकार है। रूपक के भी अनेक भेदोपभेद किए गए हैं जिनमें सांगरूपक और निरंगरूपक प्रमुख हैं।

3. **संदेह** : समानता के कारण जहाँ दो वस्तुओं के बीच संदेह का कथन किया जाता है वहाँ संदेह अलंकार होता है । जैसे – "सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है ।"

यहाँ नारी और साड़ी के बीच संदेह की स्थिति का कथन किया गया है, इसलिए यहाँ संदेह अलंकार है ।

4. **भ्रांतिमान** : जहाँ भ्रमवश किसी वस्तु को अन्य वस्तु समझ लिया जाए वहाँ भ्रांतिमान अलंकार होता है । जैसे –

"बृंदावन बिहरत फिरैं राधा नंद किसोर ।
नीरद दामिनि जानि संग डोलै बोलै मोर ।।"

संदेह तथा भ्रांतिमान में अंतर यह होता है कि संदेह में अंत-अंत तक निर्णय नहीं हो पाता जबकि भ्रांतिमान निर्णीत समझ का कथन होता है । साँप या रस्सी का संदेह 'संदेह' अलंकार है जबकि रस्सी को साँप समझ लेना 'भ्रांतिमान' है ।

5. **उत्प्रेक्षा** : जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाए वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है । जैसे –

"सोहत ओढ़ै पीत पट स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमनि सैल पर आतप पर्‌यो प्रभात ।।"

स्पष्ट है कि पीतांबरधारी श्रीकृष्ण का साँवला शरीर उपमेय है जिसमें प्रातःकालीन किरणों से युक्त नीलमणि के पर्वत की संभावना का कथन होने के चलते इस दोहे में उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

6. **अतिशयोक्ति** : जहाँ उपमेय का नहीं केवल उपमान का कथन किया जाए, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है । अतिशयोक्ति अलंकार वहाँ भी माना जाता है जहाँ कथ्य को अतिशय बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है । जैसे –

"बाँधा था विधु को किसने,
इन कली जंजीरों से,
मणि वाले फणियों का मुख क्यों,
भरा हुआ है हीरों से ।"

स्पष्ट है कि यहाँ उपमान 'विधु', 'जंजीरों' और 'फणियों' द्वारा उपमेय 'मुख', 'लटें' तथा 'माँग' का निगरण (निगलना) कर लिया गया है । यानी केवल उपमान का कथन किया गया है, इसलिए यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है ।

7. **दृष्टांत** : जहाँ बिंब-प्रतिबिंब भाव से दो कथन एकसाथ प्रस्तुत किए जाएँ वहाँ दृष्टांत अलंकार होता है । जैसे –

"पगीं प्रेम नंदलाल के, हमैं न भावत भोग ।
मधुप राजपद पाय के, भोख न माँगत लोग ।।"

8. **विरोधाभास** : जहाँ वस्तुओं में वस्तुतः विरोध नहीं हो, फिर भी विरोध का आभास हो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है । जैसे –

"तुम मांसहीन तुम रक्तहीन तू अस्थिशेष तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल हे चिर पुरान हे चिर नवीन ।।"

9. विभावना : जहाँ कारण के बिना ही कार्य होने का कथन कर चमत्कार पैदा किया जाए वहाँ विभावना अलंकार होता है । जैसे -

"बिनु पद चलै सुनै बिनु काना । कर बिनु करम करै बिधि नाना ।।
आननरहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।।"

10. प्रतीप : प्रतीप शब्द का अर्थ होता है - विपरीत । जहाँ उपमान को ही उपमेय बताया जाए वहाँ प्रतीप अलंकार होता है । जैसे -

"तों मुख ऐसो पंकसुत अरु मयंक यह बात ।
बरनै सदा असंक कवि बुद्धि रंक विख्यात ।।"

यहाँ प्रसिद्ध उपमान पंकज यानी कमल को उपमेय तथा उपमेय मुख को उपमान बताया गया है, इसलिए यहाँ प्रतीप अलंकार है ।

11. मानवीकरण : मानवेतर प्राणी या जड़ पदार्थों का मनुष्य की तरह जहाँ आचरण करते चित्रित किया जाता है वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है । जैसे -

"पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से,
मानो तरु भी झूम रहे हों मंद पवन के झोंकों से ।"

शब्दशक्ति

शब्द की शक्ति असीम है । संसार में मूर्त या अमूर्त पदार्थ की प्रतीति कराने वाली ध्वनि को शब्द कहते हैं । मोटे तौर पर शब्द का अर्थ ध्वनि, वाक्य, पद, कथन आदि भी होता है । कवि गंग के अनुसार "जो सुनि परे सो शब्द है, समुझि परे सो अर्थ ।" अर्थात जो सुन पड़े वह शब्द है और उससे जो समझ में आवे वह अर्थ है । शब्द उच्चारण के साथ ही हमारे मन, कल्पना और अनुभूति पर प्रभाव डालता है । रसगुल्ला का नाम लेते ही मुँह में पानी भर आता है । साँप शब्द का उच्चारण करते ही मन में भय का संचार होता है । यह प्रभाव अर्थगत है । अतः जिस शक्ति के द्वारा शब्द का यह अर्थगत प्रभाव पड़ता है, वही शब्दशक्ति कहलाती है । शब्द का अर्थ-बोध करानेवाली शक्ति ही शब्दशक्ति है । यह एक प्रकार से शब्द और अर्थ का संबंध है, शब्द का अर्थव्यापार है ।

शब्दशक्तियाँ तीन हैं - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना । इनके संबंध से तीन प्रकार के शब्द होते हैं - वाचक, लक्षक और व्यंजक; तथा तीन प्रकार के अर्थ होते हैं - वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ ।

अभिधा

अभिधा वह शब्दशक्ति या शब्द का व्यापार है जिसमें साक्षात संकेतित या मुख्य अर्थ का बोध होता है । जैसे 'आम' कहने से एक विशेष प्रकार के फल को हम समझ लेते हैं । उसे किताब या कुर्सी नहीं समझते । यहाँ आम वाचक शब्द है जिसका मुख्यार्थ विशेष फल है जो निश्चित है । व्यवहार, परंपरा, कोश, व्याकरण आदि से यह अर्थ सिद्ध है । यानी शब्द और उसके अर्थ के बीच किसी प्रकार की बाधा नहीं है । जीवन के नित्य व्यवहार में अभिधा का अत्यधिक महत्त्व है । यह कुर्सी है, यह किताब है, राम जा

रहा है, श्याम खा रहा है आदि वाक्यों के विशेष अर्थ नहीं हैं । इन वाक्यों को सुनकर हम प्रचलित और निश्चित अर्थ को तुरंत समझ लेते हैं ।

लक्षणा

मुख्यांर्थ की बाधा होने पर रूढ़ि या प्रयोजन को लेकर जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से संबंध रखनेवाला अर्थ लक्षित हो, उसे लक्षणा कहते हैं । इस परिभाषा से लक्षणा में तीन बातें महत्त्वपूर्ण लगती हैं -

(1) मुख्यार्थ में बाधा

(2) मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ का संबंध; और

(3) प्रयोजन

एक उदाहरण से लक्षणा को समझने की कोशिश करें । 'सीता तो गाय है' । यहाँ 'गाय' शब्द के प्रचलित अर्थ में बाधा पड़ जाती है । हम सब जानते हैं कि 'सीता' स्त्री है, गाय नहीं । लेकिन यहाँ सीता के लिए गाय शब्द का प्रयोग विशेष प्रयोजन के लिए किया गया है । सीता की सरलता को लक्षित करने के लिए गाय शब्द का प्रयोग हुआ है । इस प्रकार यहाँ गाय शब्द का अर्थ विशेष जीव न होकर सरलता है । गाय शब्द का सरलता अर्थ लक्ष्यार्थ कहा जाएगा, वाच्यार्थ नहीं ।

लेकिन यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि सरलता का जो लक्ष्यार्थ किया गया है, उसका संबंध गाय शब्द के वाच्यार्थ उस विशेष जीव से है । अर्थात, लक्ष्यार्थ वाच्यार्थ से भिन्न तो होता है, लेकिन असंबद्ध नहीं हो सकता । अभिधा में शब्द और अर्थ संबंधित तो होते ही हैं, अभिन्न भी होते हैं ।

व्यंजना

व्यंजना का शब्दार्थ है विशेष रूप से स्पष्ट करना, खोलना या विकसित करना । अभिधा और लक्षणा शक्तियों के अपना अर्थबोध कराने के बाद जिस शक्ति से अन्य अर्थ का बोध होता है, उसे व्यंजना कहते हैं । ऐसे शब्द को व्यंजक और अर्थ को व्यंग्यार्थ कहा जाता है । एक प्रसिद्ध उदाहरण से व्यंजना को समझने की कोशिश करते हैं । सास ने बहू से कहा- 'सूर्य अस्त हो गया ।' बहू ने इसका अर्थ समझा कि 'दीपक जलाओ' । यह अर्थ वाच्य नहीं हो सकता, क्योंकि सूर्य का दीपक अर्थ और अस्त होने का जलाना अर्थ किसी प्रकार साक्षात संकेतित नहीं है । फिर यह अर्थ लक्ष्य भी नहीं है । क्योंकि लक्षणा की पहली शर्त है मुख्यार्थ में बाधा । सो, सूर्य का जो वाच्य अर्थ है, वही यहाँ भी है । कहीं कोई बाधा नहीं इसलिए इस अर्थ को न तो वाच्य ही कह सकते हैं न लक्ष्य ही । यह अर्थ व्यंग्य है । अर्थात विशेष प्रसंग से इस अर्थ की व्यंजना या प्रतीति होती है ।

इस प्रकार व्यंजना शक्ति काव्य में अर्थ की गहराई, सघनता और विस्तार लाकर रस को व्यंजित करती है । काव्यशास्त्रियों ने तो सर्वश्रेष्ठ काव्य की सत्ता वहीं स्वीकार की है जहाँ रस व्यंग्य (व्यंजित) हो ।

काव्य गुण

जिस प्रकार मनुष्य में गुण और दोष होते हैं उसी प्रकार काव्य में भी होते हैं । जैसे गुणों से व्यक्तित्व का उत्कर्ष और दोषों से अपकर्ष होता है, वैसे ही गुण से काव्य का उत्कर्ष और दोष से अपकर्ष

होता है । इसलिए आचार्यों ने काव्य के लिए सगुण और अदोष होने का विधान किया है ।

भारतीय आचार्यों ने गुण को आत्मा का धर्म माना है । काव्य में भी आत्मा होती है – जिसे रस कहा गया है । अत: काव्य में गुण रस का धर्म है । अर्थात गुण रस के अंतरंग पदार्थ हैं । गुण उसे कहते हैं जो रस के साथ सदैव विद्यमान रहता है । गुणों की संख्या तीन मानी गई है – माधुर्य, ओज और प्रसाद ।

माधुर्य गुण

जहाँ काव्य पाठ से सहृदय का अंत:करण प्रसन्न अथवा द्रवित हो जाता है वहाँ माधुर्य गुण होता है । श्रृंगार, करुण और शांत रस में यह गुण विद्यमान रहता है । इस गुण में कठोर वर्णों का प्रयोग न होकर कोमलकांत पदावली का प्रयोग होता है । जैसे –

"निरख सखी ये खंजन आये
फेरे उन मेरे रंजन ने इधर नयन मन-भाये ।"

ऊपर की पंक्तियों में वियोग की अवस्था में उर्मिला अपनी सखी से यह कथन करती है । खंजन पक्षी आ गए, ऐसा लगता है मेरे प्रियतम ने अपने नयनों को इधर फिरा दिया है । इस कथन में जो अनुभव की उष्णता है वह सहृदय के अंत:करण को द्रवित कर देती है । इसमें वियोग श्रृंगार है और प, ट, ठ, ण वर्णों के प्रयोग भी नहीं हैं । अत: यहाँ माधुर्य गुण है ।

ओज गुण

जहाँ काव्य को पढ़ने से सहृदय के चित्त में तेज और स्फूर्ति का संचार हो जाए वहाँ ओज गुण होता है । आचार्यों ने इस गुण को वीर, वीभत्स और रौद्र रसों में बताया है । इस गुण में कठोर वर्ण प्रयुक्त होते हैं और समास बहुलता होती है । जैसे –

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो ।"

प्रसाद गुण

जहाँ कविता का अर्थ और भाव सुनते ही समझ में आ जाए और सहृदय के चित्त में व्याप्त हो जाए वहाँ प्रसाद गुण होता है ।

प्रसाद गुण से युक्त कविता में अर्थ की स्पष्टता उसकी प्रधान विशेषता है । भावों के अनुसार इसमें कोमल-कठोर सब तरह के वर्णों का प्रयोग किया जा सकता है । सभी रसों के उत्कर्ष में यह गुण सहायक हो सकता है । जैसे –

"बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी-भर देखी
पकी-सुनहली फसलों की मुसकान"

रस

किसी भाव की पूर्ण परिपक्वावस्था को रस कहा जाता है । यह स्थायी भाव का परिपक्व रूप होता है ।

भरत मुनि ने कहा है कि "विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रस निष्पत्तिः ।" स्थायी भाव अनुकूल परिवेश पाकर मन में जाग्रत होता है और विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों की संगति से पुष्टि प्राप्त करता हुआ रसरूप में परिणत हो जाता है ।

सीधी सी बात है कि जैसे भोजन में जीभ के माध्यम से खट्टा, मीठा, तीता आदि स्वादों का अनुभव होता है और उस आस्वाद-अनुभूति को रस कहते हैं, वैसे ही साहित्य को पढ़ने या देखने से मन को जो आस्वादमय अनुभूति होती है उसे ही रस कहा जाता है । ये रस कुल नौ माने गए हैं ।

आश्रय, विभाव, अनुभाव आदि रस की निष्पत्ति के अंग होते हैं । एक परिचय द्रष्टव्य है –

1. **आश्रय** : जिसके अंदर स्थायी भाव का उद्रेक होता और वह रसनिष्पति तक पहुँचता है ।

2. **विभाव** : विभाव दो होते हैं – आलंबन और उद्दीपन ।

(क) आलंबन विभाव : जिसके प्रति आश्रय के अंदर भावोद्रेक होता है उसे आलंबन विभाव कहा जाता है ।

(ख) उद्दीपन विभाव : जग चुके भाव को पुष्टि देते हुए रसनिष्पत्ति तक पहुँचानेवाले परिवेश रूपी निमित्त कारणों को उद्दीपन विभाव कहा जाता है । नायक के अंदर यदि श्रृंगार रस के स्थायी भाव रति का संचार हुआ है तो एकांत परिवेश, नदी का किनारा, खिले फूल, मंद हवा आदि उद्दीपन विभाव होंगे। नायिका के कटाक्ष, आभूषण, केशसज्जा आदि भी उद्दीपन हैं ।

3. **अनुभाव** : उदित भाव की सूचना देनेवाले आंगिक विकारों को अनुभाव कहा जाता है । ओठों का फड़कना, आँखों का लाल होना और भृकुटी का तन जाना रौद्र रस के अनुभाव हैं, क्योंकि ये सूचित करते हैं कि आश्रय के अंदर क्रोध नामक स्थायी भाव का उदय हो चुका है । उस आश्रय को यदि अपनों का समर्थन, आलंबन (विपक्षी) की कटु बातें और किसी सबल के ललकार रूपी उद्दीपन उसके उदित भाव को उद्दीप्त कर दें तो थोड़ी-बहुत दुविधा, भय, दया, आदि संचारी भावों से गुजरता हुआ वह रस-रूप में निष्पन्न हो जाएगा ।

4. **संचारी भाव** : इसे व्यभिचारी भाव भी कहा जाता है । आलंबन के प्रति आश्रय के अंदर जाग्रत भाव उद्दीप्त होता हुआ रसनिष्पत्ति तक पहुँचता है । इस अंतराल में चिंता, ग्लानि, विरक्ति, दीनता, आलस्य, मोह, लज्जा आदि छोटे-छोटे भाव आते-जाते रहते हैं । चूँकि ये स्थायित्व प्राप्त नहीं कर पाते इसलिए इन्हें संचारी (संचरण करनेवाले) या व्यभिचारी भाव कहते हैं । यानी भाव दो हुए – स्थायी भाव और संचारी भाव ।

5. **स्थायी भाव** : स्थायी भाव उन भावों को कहा जाता है जो संस्कार रूप में हर किसी के मन में सदा स्थित रहते हैं । सुषुप्तावस्था में स्थित वे भाव ही अनुकूल आलंबन और परिवेश पाकर जाग्रत होते हैं और अंततः रसनिष्पत्ति तक पहुँचते हैं । इनकी निश्चित संख्या नौ बताई गई है । रति के ही अन्य दो रूप वात्सल्य और भक्ति को भी परवर्ती विद्वानों ने स्वतंत्र रस मान इनके भी दो स्थायी भाव स्वीकार कर लिए हैं । यानी स्थायी भाव कुल ग्यारह हैं और इनसे ही निष्पन्न रस भी कुल ग्यारह होते हैं –

रस	स्थायी भाव	रस	स्थायी भाव
1. श्रृंगार रस	रति	7. वीभत्स रस	जुगुप्सा (घृणा)
2. हास्य रस	हास	8. अद्‌भुत रस	विस्मय
3. करुण रस	शोक	9. शांत रस	शम (निर्वेद)
4. रौद्र रस	क्रोध	10. वात्सल्य रस	संतान विषयक रति
5. वीर रस	उत्साह	11. भक्ति रस	ईश्वर विषयक रति
6. भयानक रस	भय		

इस तरह रस के कुल पाँच अंग होते हैं - (1) आश्रय, (2) आलंबन विभाव (3) उद्दीपन विभाव (4) स्थायी भाव (5) संचारी (व्यभिचारी) भाव ।

रस परिचय

1. **श्रृंगार रस :** आश्रय के मन में आलंबन के प्रति जाग्रत रति (प्रेम) भाव जिस रस के रूप में निष्पन्न होता है उसे श्रृंगार रस कहते हैं । श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है । रति का अर्थ प्रेम होता है । इस रस का सहायक गुण माधुर्य होता है । जैसे -

"पिय तिय सौं हँसि वै कह्यौ लखैं दिठौना दीन ।
चंदमुखी मुखचंदु तैं भलौ चंद समु कीन ।।"

यहाँ आश्रय पिय, आलंबन तिय, उद्दीपन दिठौना तथा हँसना संचारी भाव है । श्रृंगार रस के दो भेद होते हैं - (क) संयोग श्रृंगार (ख) वियोग श्रृंगार

(क) संयोग श्रृंगार : जहाँ आश्रय-आलंबन के सहभाव से युक्त श्रृंगार चित्रण हो वहाँ संयोग श्रृंगार होता है । जैसे -

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात ।
भरे भौन में कहत हैं नैनन ही सौं बात ।।"

इस दोहे में नायक आश्रय है, नायिका आलंबन है, नायिका का मुकरना (नटत), खीझना, मानना, लजाना आदि अनुभाव श्रृंगार रस के स्थायी भाव रति की सूचना देते हैं ।

(ख) वियोग श्रृंगार : जहाँ आश्रय के आलंबन से अलग होने या संयोगविहीनता की वेदना का चित्रण हो वहाँ वियोग श्रृंगार रस होता है । वियोग श्रृंगार को विप्रलंभ श्रृंगार भी कहा जाता है । इसका भी स्थायी भाव रति ही होता है ।

"मधुबन तुम कत रहत हरे !
बिरह बियोग स्याम सुंदर के, ठाढ़े क्यौं न जरे ?"

2. **हास्य रस :** अटपटे कथन, स्वरूप या आचरण के चित्रण से उत्पन्न हास्यपूर्ण प्रसंग का जहाँ चित्रण हो वहाँ हास्य रस होता है । हास्य रस का आलंबन मूर्ख, मजाकिया या अटपटे स्वरूप अथवा आचरण वाला व्यक्ति होता है । आलंबन की हास्यास्पद चेष्टाएँ, पोशाक, आकृति आदि उद्दीपन विभाव होते हैं । आश्रय की आँखों का विशेष खुलना, ताली पीटना, उछलना-कूदना आदि अनुभाव होते हैं । आँसू, कंप, पसीना आदि संचारी होते हैं । जैसे -

"घन घमंड नभ गरजत घोरा । टकाहीन डरपत मनमोरा ।
दामिनी दमकि रही घन माही । जिमि लीडर की मति थिर नाहीं ।"

3. करुण रस : प्रिय के शोक या उसकी संकटग्रस्तता, दीनता आदि का चित्रण जहाँ होता है वहाँ करुण रस होता है । इसमें आलंबन मृत या संकटग्रस्त या दीनता को प्राप्त व्यक्ति होता है । इसमें उद्दीपन स्मृति को ताजा करने वाली वस्तुएँ, संचारी - मोह, स्मृति, चिंता, ग्लानि, उन्माद आदि, अनुभाव - रुदन, छाती या माथा पीटना, मूर्च्छा आदि होते हैं । जैसे -

"हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी ।
तुम देखी सीता मृगनैनी ।"

4. रौद्र रस : जहाँ शत्रु या दुष्ट आलंबन के प्रति आश्रय के क्रोध प्रदर्शन का चित्रण हो वहाँ रौद्र रस होता है । रौद्र रस की स्थिति अपमान के कारण भी बनती है । यह अपमान किसी सज्जन द्वारा भी या अनजाने किया हुआ भी हो सकता है ।

कहा जाता है कि हानि, अपमान या प्रताड़ना के विरुद्ध जाग्रत क्रोध रौद्र रस के रूप में निष्पत्ति प्राप्त करता है । रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध होता है ।

"माखे लखन कुटिल भई भौहें ।
रदफुट फरकत नैन रिसौहें ।।
कहे जनक अस अनुचित बानी ।
बिद्यमान रघुकुल मनि जानी ।"

यहाँ लक्ष्मण आश्रय एवं जनक आलंबन हैं ।

5. वीर रस : शत्रु-प्रतिरोध, भव्य आयोजन, दान, दया आदि में पूर्ण प्रसन्नता और गंभीर स्वीकारात्मक प्रयत्न का जहाँ चित्रण हो वहाँ वीर रस होता है ।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है तथा इसका सहायक गुण ओज होता है । उदाहरण -

"रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ जाने दे उनको स्वर्ग धीर ।
पर फिरा हमें गांडीव गदा लौटा दे अर्जुन भीम वीर ।।"

रौद्र रस तथा वीर रस में क्रमशः स्थायी भाव क्रोध तथा उत्साह का अंतर होता है । क्रोध में आँखों में फैलाव के साथ लालिमा भी आ जाती है और संचारी के रूप में उसमें संकुचन भी आता है । उत्साह में आँखों में मात्र विस्तार आता है और उसमें सादगी तथा गंभीरता से मुक्त उज्ज्वलता बनी रहती है ।

6. भयानक रस : जहाँ प्राणघातक संकट बड़ी हानि अथवा शत्रु, राक्षस आदि से उत्पन्न भय का चित्रण हो वहाँ भयानक रस होता है ।

"गगड़ि गड़गड़ान्यो खंभ फाट्यो चरमराय,
निकस्यो नरनाहर को रूप अतिभयानो है ।
ककटि कटकटावै, डाढ़ै दसन लपलपावै भीम
अधर फरफरावै मुच्छ व्योम व्यापमानो है ।
भभरि भरभराने लोग, डडारि डरपराने धाम

थथरि थरथराने अंग चितै चाहत खानो है ।
कहत 'रघुनाथ' कवि गरजे नृसिंह जबै
प्रलै को पयोधि मानो तड़पि तड़तड़ानो है ।।"

यहाँ आलंबन नृसिंहावतार का भयानक रूप है और उद्दीपन विभाव उनका दाँत कटकटाना, जीभ लपलपाना आदि है । लोग आश्रय हैं और उनका भरभरा कर भागना, डरना आदि अनुभाव हैं ।

7. **वीभत्स रस** : घृणित वस्तु, दृश्य या व्यापार से उत्पन्न घृणा के चित्रण में वीभत्स रस होता है । अधजले शव से दुर्गंध, कुत्तों-गिद्धों द्वारा मांस नोच-नोच कर खाना, सड़े घाव या अंगवाला व्यक्ति या जानवर, मल-मूत्र की जगह, उल्टी आदि इस रस के आलंबन होते हैं । जैसे -

"गीध जाँघ को खोदि खोदि कै मांस उपारत ।
स्वान आँगुरनि काटि-काटि कै खात विदारत ।।"

वीभत्स रस का यह प्रसिद्ध उदाहरण है । इसमें विभाव पक्ष का ही कथन हुआ है । श्मशान का यह दृश्य समग्र में आलंबन है जिसमें गिद्धों द्वारा अधजले शव की जाँघ खोद मांस खाना और कुत्तों का अँगुलियाँ काट-काट कर खाना उद्दीपन हैं । इसमें जुगुप्सा (घृणा) स्थायी भाव है जो उद्दीपन के दृश्यों से वृद्धि पाता है ।

8. **अद्भुत रस** : असामान्य घटना, कार्य, दृश्य, वस्तु आदि से उत्पन्न आश्चर्य या विस्मय का जहाँ चित्रण होता है वहाँ अद्भुत रस होता है । जैसे -

"इहाँ-उहाँ दुई बालक देखा ।
मति भ्रम मोरि कि आन बिसेखा ।"

यहाँ राम आलंबन और कौशल्या आश्रय हैं । राम का दो जगह एक ही बार में दिखना उद्दीपन है। इस रस में हाथों का उठना, आँखें फैलना, मुँह खुलना, साँस ठहरना आदि अनुभाव होते हैं ।

9. **शांत रस** : किसी भी भौतिक पदार्थ या व्यक्ति के प्रति जहाँ लिप्सा या उद्योग के पूर्ण राहित्य अभाव का चित्रण होता है वहाँ शांत रस होता है । जैसे -

"बन बितान रवि ससि दिया फल भख सलिल प्रवाह ।
अवनि सेज पंखा पवन अब न कछू परवाह ।।"

यहाँ विलास के कृत्रिम साधन अव्यक्त आलंबन हैं । उनके प्रति निर्वेद यानी विरक्ति आश्रय के मन में उदित और विकसित होकर पूर्ण शांत रस की स्थिति लाती है । उस स्थिति के अनुभाव प्राकृतिक संसाधनों के स्वीकार तथा मानवीय संसाधनों के प्रति निर्लिप्तता के रूप में व्यक्त हुए हैं ।

10. **वात्सल्य रस** : पुत्र, पुत्री या अन्य किसी शिशु के प्रति जाग्रत स्नेह के प्रसंग, दृश्य या भाव का चित्रण जहाँ हो वहाँ वात्सल्य रस होता है । जैसे -

"कबहुँ पलक हरि मूँद लेत है कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि-रहि करि-करि सैन बतावै ।
इहि अंतर अकुलाय उठै हरि जसुमति मधुरै गावै ।
जो सुख सूर अमर मुनि दुरलभ सो नंदभामिनी पावै ।"

इस उद्धरण में आलंबन बालक कृष्ण हैं जिनके आँखें मूँदना, अधर फड़काना, अकुलाकर उठ जाना

आदि उद्दीपन आश्रय के रूप में यशोदा के अंदर स्थायी भाव वत्सलता को जगाकर उसकी सुखानुभूति रूप रस की निष्पत्ति कराते हैं ।

वात्सल्य रस के भी दो भेद हैं - संयोग और वियोग ।

11. **भक्ति रस** : ईश्वर, देव, देवी या अन्य किसी अलौकिक महिमायुक्त सत्ता के प्रति अनुरागयुक्त पूर्ण समर्पण भावना का जो चित्रण होता है वहाँ भक्ति रस की स्थिति मानी जाती है ।

भक्ति रस का स्थायी भाव ईश्वरानुराग बताया गया है । यहाँ ईश्वर का व्यापक अर्थ में प्रयोग समझना चाहिए । ईश्वर, देवी, देवता आदि के साथ ही अन्य धर्मावलंबियों के अल्लाह, गॉड या धर्मप्रवर्तकों के प्रति उनकी अलौकिक महिमा का स्वीकार तथा उनके प्रति समर्पण की भावना होती है । उनका समर्पित अनुराग निवेदन भी भक्ति ही है । जैसे -

''नैनन्हि की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय ।
पलकन्ह की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय ।।''

साधारणीकरण

अभिनवगुप्त नामक आचार्य ने माना कि काव्य में व्यक्त स्थायी भाव का सहृदय की अनुभूति से साधारणीकरण होता है । वह स्थायी भाव संस्कार रूप में सहृदय में भी होता है ।

वस्तुतः साधारणीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो रचनाकार के भाव से प्रारंभ होकर सहृदय की भावन क्षमता (भावकत्व) तक अनुभूति की एक सामान्य धारा प्रवाहित कर देती है । इस तरह कवि (रचनाकार) अपनी अनुभूतियों को सहृदय तक संप्रेषित करने में सफल होता है । साधारणीकरण या संप्रेषण की यह प्रक्रिया रचनाकार की रचनात्मक कुशलता पर निर्भर होती है । इसमें विफलता रचनाकार की विफलता होती है ।

साधारणीकरण या संप्रेषण की इस प्रक्रिया का सक्षम अंग बनने के लिए सहृदय में उसके लायक भावनात्मक योग्यता भी आवश्यक होती है और मानसिक स्तर पर उसकी स्वीकृति भी ।

काव्य रीति

विभिन्न गुणों से युक्त अलग-अलग पद रचना की प्रणालियों को रीति कहा जाता है ।

रीति शब्द का अर्थ होता है प्रणाली, परंपरा, पद्धति, गति आदि । काव्य में रीतिवाद के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आचार्य वामन थे, परंतु उनके पूर्व भी रीति पर अनेक आचार्यों ने विचार किए थे । वामन ने रीति को काव्य की आत्मा घोषित कर दिया । उन्होंने ''विशिष्ट पद-रचना अथवा विशेष प्रकार से काव्य में पद के प्रयोग को 'रीति' की संज्ञा दी ।''

रीति के मुख्य तीन भेद माने गए हैं - (क) वैदर्भी (ख) गौड़ी (ग) पांचाली ।

ये तीनों नाम तीन स्थानविशेष के सूचक हैं । विदर्भ, गौड़ और पांचाल प्रदेश । देश विशेष के प्रमुख कवियों की प्रचलित प्रणाली के नाम पर ही रीतियों का वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी आदि नामकरण हुआ है ।

(क) वैदर्भी रीति : विदर्भ देश और उसके प्रभाव क्षेत्र में प्रचलित काव्य रीति को वैदर्भी रीति कहा गया। इस रीति की विशेषता है कि यह माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों से युक्त होती है, फिर भी इसमें माधुर्य गुण की प्रधानता होती है ।

(ख) गौड़ी रीति : गौड़ बंगाल का प्राचीन नाम था । ओज गुण से युक्त पदों तथा सामासिक बहुलता से युक्त रीति, गौड़ी कही गई है । इसमें मधुरता तथा सुकुमारता का अभाव होता है । विद्वानों का मत है कि इसका ही एक अन्य नाम मागधी भी है । इसकी पदरचना संयुताक्षरबहुल होती है ।

(ग) पांचाली रीति : पांचाली रीति में सामासिकता की अत्यल्पता या अभाव की स्थिति होती है । इसका पद संगठन भी शिथिल होता है । सुकुमारता अत्यधिक होने के कारण इसमें मधुरता तो होती है परंतु दीप्ति-कांति का अभाव रहता है । इसमें भावशिथिलता भी देखी जाती है ।

सहृदय

हृदय शब्द में लगा 'स' उपसर्ग 'साथ' का बोधक है । यानी हृदय के साथ । हृदय भाव का केंद्र या उद्‌गम स्थल है । काव्य (साहित्य) भावप्रधान रचना है इसलिए उसमें व्यक्त भावनात्मक स्थितियों तथा विशेषताओं को सही रूप में समझने के लिए आवश्यक है कि पढ़ने या देखने वाले में भी वैसी ही भावनात्मक क्षमता हो, वह भी वैसा सहृदय हो । यह 'स' उपसर्ग 'समान' का भी अर्थ देता है, यानी कवि के समान भावनात्मक क्षमता वाला हृदय जो रचना का उचित भावन कर सके । ऐसा नहीं होने से भावकत्व व्यापार–भावन करने का व्यापार–बाधित हो जाता है ।

सहृदय के ही अर्थ में रसिक, भावक, सामाजिक, जागरूक आदि शब्दों का भी व्यवहार होता रहा है, परंतु सर्वाधिक प्रचलित तथा प्रतिष्ठित 'सहृदय' शब्द ही है । अवश्य ही स्थान, समाज तथा संप्रदाय-भेद से ये अन्य शब्द प्रचलित हुए होंगे, परंतु ये सभी साहित्यिक योग्यता के परिचायंक अवश्य हैं । इनसे पता चल जाता है कि सभी दर्शक या पाठक को सहृदय या रसिक नहीं कहा जा सकता । लिखे हुए को पढ़ने या मंच पर प्रस्तुत हो रहे को देखने का काम कोई निरक्षर, अपराधी, दार्शनिक, वैज्ञानिक, वैयाकरण या व्यापारी भी कर सकता है, परंतु उन सबको सहृदय नहीं कहा जा सकता । संभव है कि जिस दृश्य, प्रसंग या उक्ति पर कोई सहृदय विभोर हो जाए या वाह-वाह कर उठे उससे ही सर्वथा अप्रभावित कोई असहृदय दर्शक सो रहा हो ।

सहृदय से ही कथन (साहित्य) की सार्थकता सिद्ध हो पाती है । भरतमुनि के नाट्‌यशास्त्र में जिसे 'प्रेक्षक' कहा गया है उसकी ही अगली अवधारणा को आनंदवर्द्धन ने 'सहृदय' नाम दिया ।

यथार्थवाद

यथार्थ शब्द का अर्थ होता है जैसा है वैसा ही । भ्रम इसका विपरीतार्थक होता है । उसमें जैसा प्रत्यक्ष दिखता है वैसा अर्थतः होता नहीं । कल्पना भी यथार्थ से अलग होती है । जो अभी नहीं हो उसके होने की मान्यता कल्पना होती है ।

यथार्थ को अपने चिंतन-लेखन का आधार मानने का सिद्धांत यथार्थवाद कहलाता है । साहित्य में इस यथार्थवाद का प्रारंभ पाश्चात्य साहित्य से माना जाता है । वहाँ का रियलिज्म ही हिंदी में यथार्थवाद कहलाता है । साहित्य में यथार्थवाद मुख्यतः दो रूपों में विकसित हुआ – (क) सामाजिक यथार्थवाद (ख) मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद ।

मार्क्सवाद में द्वंद्वात्मक भौतिकवादी दर्शन और ऐतिहासिक भौतिकवाद को महत्त्व दिया जाता है । समाजवादी यर्थाथवाद इन्हीं से विकसित हुआ है । साहित्य में शोषित वर्ग के वस्तुगत चित्रण के साथ ही

मार्क्सवाद वर्ग-संघर्ष को प्रोत्साहित करना भी अपना उद्देश्य मानता है । प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड के सिद्धांतों में मानव-मन की यथार्थता को सर्वोपरि माना गया था और साहित्य को उसके सिद्धांतों ने भी प्रभावित किया था । दोनों में अंतर यह है कि सामाजिक यथार्थवाद में जहाँ समाज प्रमुख होता है, वहीं मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद में व्यक्ति प्रमुख बन जाता है । प्रेमचंद के कथा साहित्य में यथार्थवाद के प्रारंभिक दर्शन हुए थे । जैनेंद्र, अज्ञेय और इलाचंद जोशी के कथा साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की प्रमुखता देखी गई थी ।

पश्चिम के मैजिकल रियलिज्म से प्रेरित **जादुई यथार्थवाद** के अनेक सफल प्रयोग हिंदी में भी दिखाई पड़ते हैं । जीवन के अनेक प्रसंगों को अपने चित्रण के दायरे में लेते हुए एक रहस्यात्मक वातावरण का निर्माण करता हुआ लेखक जब यथार्थ को चित्रित करता है तो उसे जादुई यथार्थवाद कहते हैं । मनोवैज्ञानिक तथा समाजवादी यथार्थवाद जब चित्रण की एकांगिकता से प्रभावित होने लगा तब यथार्थ को चित्रित करने के लिए एक नए रूप की जरूरत महसूस हुई । जादुई यथार्थवाद ने अपनी खास बनावट और बुनावट से उस जरूरत को पूरा किया । जादुई यथार्थवाद में यथार्थ को अधिक समग्रता और सजीवता में पकड़ पाने की सामर्थ्य थी । हिंदी कहानी में उदय प्रकाश की कहानी 'तिरिछ' को जादुई यथार्थवाद की सफल कहानी मानी गई है । उन्हीं की कहानी 'पॉल गोमरा का स्कूटर', 'वारेन हेस्टिंग्स का साँड़' आदि जादुई यथार्थ से बुनी गई हैं ।

अस्तित्ववाद

साहित्य में व्यक्तिवादिता को प्रमुखता देने वाले दर्शनों में अस्तित्ववाद सबसे आगे रहा है । इसकी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें आंतरिक विविधता अन्य किसी भी दर्शन से अधिक रही है ।

अस्तित्ववादी दर्शन वरण अथवा चयन की स्वच्छंदता के रूप में अपने जीवित व्यक्तित्व का होना प्रमाणित करता है । आस्तिक अस्तित्ववादी कीर्केगाड ने ईश्वर के संदर्भ में मानवीय अस्तित्व को पहचान देने का प्रयास किया । नास्तिक अस्तित्ववादियों में सर्वाधिक प्रमुख सार्त्र हुए । स्वतंत्रता, चुनाव, संवेदना, त्रास, मृत्यु, अजनबियत, ऊब, ऊबकाई, भाषा, समाज आदि अस्तित्ववादियों के विवेच्य विषय रहे हैं । उनका मत है कि मनुष्य का होना स्वतंत्रता में ही सार्थकता पाता है । यह स्वतंत्रता उसे हर स्तर पर चाहिए । स्वतंत्रता की स्थिति में ही वह अपनी संभावनाओं को अन्वेषित करता है । विद्रोह द्वारा वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व प्रमाणित करता है । नियमों की परतंत्रता में व्यक्ति का अस्तित्व खो जाता है और वह अपने आप से अजनबी हो जाता है ।

अस्तित्ववाद व्यक्ति को प्रमुख बना देता है । उसके अनुसार व्यक्ति अन्य किसी भी व्यक्ति से भी पूर्णत: भिन्न होता है । वह अकेले एक व्यक्ति के रूप में ही अपने अस्तित्व को, अपने होने को और अपनी प्रतिभा को पूर्णत: प्रमाणित कर पाता है ।

आधुनिकता

आधुनिकता एक भाववाचक संज्ञा है । यह शब्द उस नवीनता का अर्थ देता है जो परंपरा के गर्भ से ही विकसित होकर अपनी स्वतंत्र पहचान कायम कर लेता है । इसमें बौद्धिकता (वैचारिकता) की प्रधानता होती है ।

पश्चिमी साहित्य में वाद के रूप में इसका प्रारंभ 1915 (डी० एच लारेंस) से लेकर 1920 ई० के आसपास माना जाता है । विद्वानों का मत है कि वह समाज, इतिहास और यथार्थ तीनों से मुक्ति का वाद था । रोमैंटिसिज्म यानी स्वच्छंदतावाद से विपरीत आधुनिकता ने परंपरा तथा मर्यादा दोनों को नकारा था । उसने नए मूल्यों को प्रतिष्ठा दी थी । आधुनिकता वह पहला वैचारिक आंदोलन था जिसने परंपरा का बोझ ढोना अस्वीकार कर वर्तमान के प्रति सर्वथा सजगता दिखाई थी और इस तरह एक नए भविष्य की परिकल्पना खड़ी की थी । बावजूद इसके, उसमें व्यक्ति की प्रमुखता बनी । प्रथम विश्वयुद्ध की तबाहियों ने पाश्चात्य बौद्धिक जगत को अपने वर्तमान तथा अतीत के नए मौलिक मूल्यांकन के लिए बाध्य किया था ।

उत्तर आधुनिकतावाद

उत्तर आधुनिकतावाद उन अनेक पश्चिमी दार्शनिक-साहित्यिक वादों में से एक है जिसने हिंदी साहित्य को प्रभावित किया है । इस वाद ने आलोचना में विशेष विवाद पैदा किया है । फ्रांसीसी देल्यूज, देरिदा तथा मिशेल फूको ने इसे विशेष लोकप्रियता दिलाई । वे यथार्थ के खंडित, परस्पर विरोधी और विजातीय चरित्र के समर्थक होने के नाते नहीं मानते थे कि मनुष्य किसी वस्तुनिष्ठ यथार्थ तक पहुँच सकता है । उत्तर आधुनिकतावादी विचारक लियोतार्द ने बताया है कि यह वाद संगति, समग्रता तथा अन्विति के विरुद्ध है, साथ ही, वह समाजवादी क्रांति के उद्देश्यों को ही अस्वीकार करता है । इस तरह प्रकारांतर से व्यक्ति की स्वतंत्रता, खंड के महत्त्व, अर्थहीनता तथा अलगाव आदि प्रवृत्तियों का वाहक होकर जाने-अनजाने सिद्ध कर देता है कि यह आधुनिकतावाद का ही एक नया संस्करण है जिसे प्रगतिवादी विचारधारा पसंद नहीं करती । हिंदी में इस वाद के उल्लेख और विवादों के कुछ प्रसंग आलोचना में आते रहे हैं ।

रूपवाद

रूपवाद का प्रारंभ रूस में पूरी तरह संस्थाबद्ध रूप में हुआ । रूपवाद, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो जाता है, उसे कहा गया जिसमें रचना के रूप पक्ष को ही साहित्य का सब कुछ माना गया । स्वाभाविक था कि रूप पक्ष में भाषा प्रमुखतम थी । समीक्षा के क्षेत्र में इसका विशेष प्रयोग किया गया ।

रूपवादियों का कहना था कि साहित्य में वस्तु, संदेश, इतिहास आदि से कुछ लेना-देना नहीं है । समीक्षा को 'क्या' से नहीं 'कैसे' से मतलब होना चाहिए । चूँकि कृति ही रूप प्राप्त करती है, इसलिए रूपवादी समीक्षा मानती है कि उसका विषय मात्र कृति है, कृतिकार-कवि या अन्य कोई नहीं ।

सारा जोर भाषा तथा शिल्प यानी रूप पक्ष पर देने से स्वभावतः रूपवाद और संरचनावाद में निकटता दिखाई पड़ती है । रूपवादियों का कहना है कि कविता में शब्द मात्र विचार-वाहक, यानी माध्यम मात्र नहीं, स्वयं विषय है । शब्द ही अर्थ के रूप में संक्रमित कर जाते हैं । संक्षेप में कहा जा सकता है कि रूपवादी रचना में रूप को ही सब कुछ मानते हैं; वस्तु उनकी मान्यता में कोई महत्त्व नहीं रखती । वे साहित्य के इतिहास को भी रूपों के ही परिवर्तनों का इतिहास मानते हैं ।

संरचनावाद

विद्वानों का मत है कि संरचनावाद प्राथमिक स्तर पर रूपवाद से ही जन्मा था । साहित्यिक संरचना का सीधा संबंध रचना के विभिन्न घटकों से होता है । प्रत्येक घटक का भी आपसी संबंध होता है तथा

सबका संबंध संरचना से होता है । संरचना रूपात्मक विन्यास पर जोर देती है । वह भाषा को ही सबकुछ मानती है । उसका मानना है कि कथा साहित्य एक ही लंबा वाक्य होता है । संरचनावाद का भी आरंभ फ्रांस में हुआ ।

उत्तर संरचनावाद

यह सरंचनावाद का ही अगला चरण है । सातवें दशक में देरिदा ने उत्तर संरचनावाद का प्रवर्त्तन किया था । उसने कहा कि भाषा अर्थ की सृष्टि करती है; अर्थ पहले से विद्यमान नहीं होता । संरचना से यहीं वह भिन्न हो जाता है, आगे बढ़ जाता है । वह भाषा से बाहर कुछ नहीं मानता । प्रस्तुत भाषा में बहुत कुछ अप्रस्तुत होता है जिसे खोजना आलोचक का काम है, लेखक का नहीं । उत्तर संरचनावादी का मानना है कि रचयिता जहाँ रचना खत्म करता है वहाँ से आलोचक का काम प्रारंभ होता है । यानी दोनों में कोई अंतर्विरोध नहीं होता । इन दोनों की अगली कड़ी पाठक होता है ।

प्रतीक

रूप, गुण या क्रियागत साम्य या उद्देश्य विशेष के चलते जो वस्तु किसी अप्रत्यक्ष या अस्पष्ट वस्तु, भाव आदि का प्रतिनिधित्व करती है उसे प्रतीक कहा जाता है ।

प्रतीक सामान्य जीवन में प्रचलित शब्द है । राम मर्यादा के प्रतीक थे, रावण दुष्टता का प्रतीक था । प्रायः हंस को निर्गुण कवियों ने प्राण या आत्मा का प्रतीक माना है । बात को अधिक सूक्ष्म तथा प्रभावकारी बनाने के लिए प्रतीक का प्रयोग किया जाता है ।

प्रतीक का प्रयोग किए जाने को प्रतीक विधान कहा जाता है । कविता ही नहीं, व्यावहारिक जीवन में भी प्रतीक विधान होता है । उजले कपड़े में इकट्ठा लोगों को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि शोक का प्रसंग है । काला बिल्ला विरोध का प्रतीक बन गया है । हिंदी कविता में निर्गुण भक्त तथा छायावादी कवियों ने प्रतीकों का विशेष महत्त्व के साथ उपयोग किया है । अलग-अलग संस्कृतियों में अलग-अलग पारंपरिक प्रतीक भी होते हैं । फिर भी इनमें नयेपन की संभावना लगातार बनी रहती है ।

बिंब

बिंब शब्द का अर्थ होता है आकार, आकृति या स्वरूप । अंग्रेजी का शब्द 'इमेज' 'बिंब' का समानार्थी है । काव्य में शब्दों द्वारा किसी स्वरूप का अंकन करने की क्रिया को बिंब विधान कहा जाता है ।

बिंब आकार, आकृति या स्वरूप को कहा जाता है । आकार उसे कहते हैं जिसमें आयाम हो । विचार में कोई आयाम नहीं होता । आयाम मुख्यतः तीन होते हैं - लंबाई, चौड़ाई और मोटाई । इस आकार या आकृति के लिए काव्य में बिंब संज्ञा प्रचलित है । मूर्ति या चित्र शब्द प्रचलित अर्थों में बिंब का पर्याय नहीं कहे जा सकते क्योंकि ये चाक्षुषता तक सीमित हो जाते हैं जबकि काव्य का बिंब विधान या मूर्तन संवेदनामूलक होने के कारण श्रवण, घ्राण, स्पर्श और भाव विशेष के क्षेत्र में भी संभव होते हैं । विचार तथा भाव के भी बिंब विधान होते हैं । चाक्षुष, श्रव्य, स्पश. घ्राण, आस्वाद्य आदि इसके अनेक भेदोपभेद किए गए हैं ।

◆ ◆ ◆

अभ्यास

1. व्याकरण क्या है ? एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करें ।
2. भाषा का परिचय दें । इसके कितने अंग होते हैं ?
3. भाषा तथा राष्ट्रभाषा का अंतर स्पष्ट करें ।
4. व्याकरण और भाषाविज्ञान में क्या अंतर है ? स्पष्ट करें ।
5. भारत में प्रचलित प्रमुख भाषावर्गों के नाम बताएँ ।
6. भारतीय आर्यभाषा के अंतर्गत आनेवाली भाषाओं का परिचय दीजिए ।
7. वर्तमान हिंदी भाषा का उद्‌गम क्षेत्र बताइए ।
8. हिंदी का विकास किस पूर्ववर्ती भाषा से हुआ है ?
9. भाषा, उपभाषा और बोली का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करें ।
10. वर्ण किसे कहते हैं ?
11. हिंदी वर्णों की कुल संख्या बताइए तथा वर्णमाला के अलग-अलग वर्गों (स्वर, व्यंजन आदि) का परिचय दीजिए ।
12. विसर्ग तथा अनुस्वार को आप स्वतंत्र वर्ण मानते हैं या नहीं; कारण बताते हुए युक्तिसंगत उत्तर दीजिए ।
13. "इस पुस्तक में किशोरियों और किशोरों की कल्पनाशक्ति के विकास, उनकी गतिविधियों की सृजनशीलता, उनके सवाल करने और उत्तर पाने के मौलिक अधिकार के समुचित संरक्षण और उसे रचनात्मक दिशा देने की कोशिश की गई है ।"

    (क) दिए गए गद्यांश में आए वर्णों के उच्चारण स्थान बताइए ।

    (ख) गद्यांश में प्रयुक्त वर्णों के उच्चारण स्थान बताइए ।
14. चंद्रबिंदु तथा अनुस्वार के प्रयोग के अंतर को स्पष्ट करें ।
15. "कविता वह साधन है, जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है ।" - इस पंक्ति से महाप्राण वर्णों को छाँटिए ।
16. संधि किसे कहते हैं ? दो-दो उदाहरणों के साथ इसके भेदोपभेदों का पूर्ण परिचय दीजिए ।
17. संधि-विच्छेद करते हुए संधि निर्देश करें -

    भेदोपभेद, रागात्मक, कवितावली, भाषान्तर, व्याकरण ।
18. शब्द की परिभाषा देते हुए शब्द और पद में अंतर बताइए ।
19. व्युत्पत्ति के आधार पर शब्द के भेदों का परिचय दीजिए ।
20. विकारी और अविकारी से आप क्या समझते हैं ? उदाहरण के साथ अंतर बताएँ ।

21. हिंदी में प्रचलित इक्कीस विदेशी शब्द बताइए ।
22. निम्नलिखित शब्दों के तद्‌भव रूप लिखें -
अग्नि, कर्पूर, नयन, प्रिय, ज्योति, आम्र ।
23. निम्नलिखित शब्दों को रूढ़, यौगिक और योगरूढ़ में छाँटकर लिखें -
हाथ, पानी, बैलगाड़ी, हिमालय, देवालय, लंबोदर, गजानन ।
24. उपसर्ग का परिचय देते हुए इससे युक्त सात शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत करें ।
25. निम्नलिखित शब्दों में स्थित उपसर्गों का निर्देश करें -
प्रक्रियाओं, उपाख्यान, प्रगति, अपराजेय, अनुशीलन, उनचास, उद्‌भावना ।
26. प्रत्यय का परिचय दीजिए ।
27. कृत् और तद्धित प्रत्ययों का अंतर स्पष्ट करें । दो-चार उदाहरण भी दें ।
28. दिखाई, समसामयिक, सुगमता, मानवता, दानवता, बंधुत्व, बुढ़ापा, प्रमाणित, पारिस्थितिक, रचनात्मक, प्रगीतात्मक - इन शब्दों से प्रत्यय अलग करें ।
29. 'लता की लोकप्रियता का मुख्य मर्म यह गानपन ही है ।' इस वाक्य से व्यक्तिवाचक संज्ञा, भाववाचक संज्ञा तथा विशेषण अलग-अलग करके लिखिए ।
30. संज्ञा के आप कितने भेद मानते हैं ? सोदाहरण परिचय दीजिए ।
31. 'मैने तुमसे कहा कि वह आएगा ।' इस वाक्य में आए सर्वनामों को रेखांकित करें ।
32. विशेषण से आप क्या समझते हैं ? विशेषण तथा भाववाचक संज्ञा के सोदाहरण अंतर बताइए ।
33. निम्नलिखित शब्दों के लिंग निर्देश करें -
विद्या, विद्यालय, पुस्तक, सम्मान, संवेदना, संस्कृति, स्वप्न, दिशा, भाषा, व्याकरण, इतिहास, विज्ञान ।
34. निम्नलिखित शब्दों के लिंग परिवर्तन करें -
नर, सखा, देव, मानव, अंबुज, पराश्रित, हाथी ।
35. वचन किसे कहते हैं ? भाषा में इसके महत्त्व पर एक टिप्पणी लिखें ।
36. निम्नलिखित शब्दों के वचन बदलें -
लड़का, पहिया, घोड़ा, छात्रा, खिड़की, लड़की, लता, कथा, वार्ता, पुस्तक, किताब ।
37. कारक से आप क्या समझते हैं ? कारक के विभिन्न भेदों और उनकी विभक्तियों का परिचय दीजिए ।
38. कर्ता के 'ने' चिह्न के प्रयोग की दशाओं का निर्देश करें ।
39. निम्नलिखित वाक्यों में कारक निर्देश करें -
(क) राम दूध पीता है ।
(ख) किताबें पढ़ी जा रही हैं ।
(ग) मुंबई से मेरा मित्र आया है ।
(घ) बच्चे को लड्डू दो ।
(ङ) छत पर बगुला बैठा था ।
(च) गुरुजी अपने कक्ष में हैं ।
(छ) सुरेश्वर को रोज दवा पीनी पड़ती है ।

40. शून्य विभक्ति किसे कहते हैं ? किन-किन कारकों में इसकी स्थिति होती है, सोदाहरण बताइए ।
41. चरम प्रत्यय किसे कहा जाता है ? और क्यों ?
42. परसर्ग और उपसर्ग में क्या अंतर है ? दो-दो उदाहरण दें ।
43. क्रिया किसे कहते हैं ? कर्म के आधार पर इसके कितने भेद होते हैं ? सोदाहरण स्पष्ट करें ।
44. प्रेरणार्थक क्रिया किसे कहते हैं ? उदाहरण के साथ समझाइए ।
45. पूर्वकालिक क्रिया किसे कहते हैं ? सोदाहरण स्पष्ट करें ।
46. क्या प्रेरणार्थक क्रियाएँ सकर्मक होती हैं ? यदि हाँ तो क्यों ?
47. निम्नलिखित वाक्यों में प्रयुक्त क्रियापदों का परिचय दीजिए -
उत्कर्ष पुस्तक पढ़ता है । माँ सौम्या को पढ़ाती है । बच्चे को सुला दो । राजमती ने रो-रोकर अपने प्रिय को पत्र लिखवाया था ।
48. द्विकर्मक क्रिया से युक्त पाँच वाक्य लिखें ।
49. निम्नलिखित वाक्यों में काल निर्देश करें -
(क) प्रेमचंद कुछ वर्ष और जीवित रहते तो 'मंगलसूत्र' अधूरा न रहता ।
(ख) संभव है कि सरहपा का जन्म राजगीर में ही हुआ हो ।
(ग) कवि अरुण कमल को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है ।
(घ) भोला पासवान शास्त्री उच्च कोटि के पत्रकार भी थे ।
(ङ) कवि केदारनाथ सिंह गद्य में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण लिखते रहे हैं ।
(च) हृषिकेश सुलभ कहानी के अलावा नाटक भी लिखते हैं ।
(छ) वे आगे चलकर कोई महत्त्वपूर्ण उपन्यास भी लिखेंगे ।
50. वाच्य किसे कहते हैं ? इसके भेदों का सोदाहरण परिचय दें ।
51. निम्नलिखित वाक्यों के वाच्य निर्देश करें -
(क) यह पुस्तक ग्यारहवीं में पढ़ाई जाती है ।
(ख) मैं सुन रहा हूँ ।
(ग) इस वर्ग में अलंकार भी पढ़ाया जाएगा ।
(घ) वंशी की धुन अब मुझसे नहीं सुनी जाती ।
(ङ) कैसे कहते हैं कि आप से नहीं चला जाता ।
(च) उससे टहला नहीं जाता ।
52. अव्यय किसे कहते हैं ? इसके प्रमुख भेदों का वाक्य प्रयोग द्वारा परिचय दीजिए ।
53. निम्नलिखित अव्ययों का नाम निर्देश कीजिए -
बहुत, मत, ठीक, और, तक, भर, बिना, अहा, शाबाश, किंतु, परंतु ।
अव्यय और निपात में अंतर बताते हुए निपात के पाँच उदाहरण दें ।
समास की परिभाषा देते हुए इसके भेदों का परिचय दें । चार-चार उदाहरण भी प्रस्तुत करें ।
. अव्ययीभाव समास का परिचय देते हुए इसके नौ उदाहरण दें ।
57. निम्नलिखित पदों का विग्रह करते हुए समास-निर्देश करें -

गंगाजल, हररोज, चंद्रमुखी, प्रत्यक्ष, परिवेश-वर्णन, चलचित्र, प्रयोगशाला, छोटी-बड़ी, रूस-चीन, चौराहा, पंचमंदिर, पाठशाला, भाराक्रांत, सर्वजया, भूली-बिसरी, अतिथिशाला, भारत-दुर्दशा, मातृभूमि ।

58. अन्वय क्या होता है ? वाक्य में इसकी भूमिका के महत्व पर प्रकाश डालें ।
59. आकांक्षा, योग्यता तथा आसत्ति का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
60. निम्नलिखित वाक्यों में उद्देश्य तथा विधेय का निर्देश करें :-
    (क) रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया ।
    (ख) थोड़ी देर में अलाव जल उठा ।
    (ग) विधाता की सृष्टि में मानव ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है ।
    (घ) सूर्य की आराधना कई तरह से की जाती है ।
61. उपवाक्य किसे कहते हैं ? सोदाहरण स्पष्ट करें ।
62. पदबंध और उसके भेदों का उदाहरण के साथ स्पष्ट परिचय दें ।
63. मिश्रवाक्य किसे कहते हैं ? इसका सोदाहरण परिचय देते हुए संयुक्त वाक्य से अंतर स्पष्ट करें ।
64. संयुक्त वाक्य का परिचय देते हुए सरल तथा मिश्र वाक्य से इसका सोदाहरण अंतर स्पष्ट करें ।
65. पदबंध और उपवाक्य में क्या अंतर है ?
66. बलाघात का परिचय देते हुए भाषा में इसके महत्त्व पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें ।
67. संधि और समास के अंतर स्पष्ट करें ।
68. सर्वनाम किसे कहते हैं ? इसके भेदों का सोदाहरण परिचय दें ।

◆ ◆ ◆